वर्तमान युग में योग का नारी पर प्रभाव

□ डॉ० श्रीमती मायारानी आर्य

आधुनिक नारी पुरुष के बराबर अधिकार प्राप्त करती जा रही है। उस पर समाज-निर्माण की जो जिम्मेदारी प्राचीन समय में थी उससे कहीं अधिक जिस्मेदारी वर्तमान समय में है और बढ़ती ही जा रही है। उसके अधिकारों में जहाँ वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर उसके कर्त्तव्य भी बहुआयामी हो गये हैं। परिवार के भरण-पोषण, शिक्षा, नारी-समाज में नव-चेतना जागृत करने का कार्य भी उसे ही करना है। समाज में नवजागरण नारी-समाज द्वारा ही लाया जा सकता है। वर्तमान समाज को नैतिक-आचरण की शिक्षा देना बहुत आवश्यक हो गया है क्योंकि इस युग में हम पश्चिम की ओर बढ़ रहे हैं। हमने अपने आदर्श और नैतिकता को त्याग दिया है, बिना नैतिक शिक्षा के समाज केवल अर्थ या तकनीकी शिक्षा से अपना विकास नहीं कर सकता।

समाज में नवजागरण यदि लाना ही है तो नारी-समाज ही इसमें अपना योगदान दे सकता है। योग व संस्कार-शिक्षा के माध्यम से देश की आगे आने वाली नयी पीढ़ी का निर्माण अपने ढंग से कर सकते हैं। वर्तमान युग में उसे परिवार, समाज, देश व राष्ट्र के उत्थान के साथ अपनी संतति में बदले परिपेक्ष्य में नये संस्कार व आचार के नियम डालने व उनके परिपालन में कड़ी निगाह रखनी होगी।

मनोविज्ञान व अन्तःचेतना के नित नये शोध से बालमनोविज्ञान पर जो विचार आये हैं उनसे परिचित होकर बालकों में मन की एकाग्रता लाकर शिक्षा में प्रवृत्त करने का नया कार्य-क्षेत्र अब उसके समक्ष खुल गया है। नौकरी में सामाजिक क्षेत्र में जाकर अब उसके पास अपनी संतति के लालन-पालन में नई चुनौती आई है, उस पर भी ध्यान देकर उसे पहले अपने जीवन में उतार कर फिर अपनी संतति को उससे अभ्यस्त करना होगा।

संतति में अच्छे संस्कारों का समावेश कराने में माता का योगदान ही प्रमुख होता है क्योंकि अधिकांश समय बालक अपने पिता की अपेक्षा माता के सान्निध्य में अधिक रहता है। इस प्रकार माता के व्यवहार से ही अच्छे संस्कार बालक में घर करते हैं। उससे ही सफल व्यक्तित्व का निर्माण होता है। बालकों में सृजनात्मक शक्ति माता ही उत्पन्न करती है। प्रत्येक बालक का अपना एक व्यक्तित्व होता है, उसकी अपनी अभिरुचि होती है और प्रसुप्त प्रतिभा होती है, उसे जान समझकर उन्हें उनके उचित मार्ग में अपनी शक्ति लगाने के लिए शारीरिक क्षमता को बढ़ाने का प्रयास करने में नारी ही योगदान कर सकती है। वैज्ञानिक, संगीतकार या कलाकार बनाने के लिये शरीर की यथोचित समृद्धि होनी चाहिये। कुछ बच्चे स्वभाव से ही आज्ञाकारी होते हैं, उन्हें एक ही बार स्पष्ट रूप से समझा देने पर वे उसका पालन करते हैं। उद्दण्ड बालकों पर विशेष ध्यान देना पड़ता है, ऐसे में उन्हें योग की व्यावहारिक शिक्षा दी जानी चाहिये। बच्चों को अनुशासित करने का सर्वोत्तम उपाय है कि माता स्वयं उनके लिये उदाहरण बन जाये, क्योंकि स्वभावतः बालक माता की दिनचर्या व व्यवहार का ही अनुकरण करते हैं।

आत्मस्थ तम
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीजी लिखते हैं कि "नारी के समक्ष आज नये रूप से उत्तर-दायित्व आ गया है। उन्हें योग की शिक्षा घर पर ही दी जानी चाहिये और यह कार्य घर में नारी ही सही रूप में कर सकती है, इसके लिये घर में योग से सम्बन्धित साहित्य रखना चाहिये।"

योग व संस्कार ही वह साधन है जिससे बालक अपने जीवन का विकास नियमित रूप में कर पाता है। योग से एक सहज व सौम्य वातावरण बालक को मिलता है।

योग और संस्कार की शिक्षा न देने पर माँ अपने बालकों को भावनात्मक रूप में व शारीरिक रूप में अस्वस्थ रखती हैं। आज समाज में अनुशासनहीनता यदि दिखाई देती है तो उसका कारण है योग-शिक्षा का अभाव। बालकों में अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं जैसे डायबिटीज, अपस्मार व अन्य अनेक मानसिक व्याधियाँ। आसन शरीर की कुछ विशिष्ट स्थितियाँ हैं जिनके करने पर बालक तनावों, रोगों व कुंठाओं से मुक्त रहता है। इस प्रकार एक योगशिक्षित माँ अपने बच्चों के जीवन को प्रशिक्षित कर सकती है।

योग का अर्थ है "मन का एकीकरण", मन के विभिन्न कार्यकलापों को एक स्थान में नियंत्रित करना। तब ऐसा 'मन' शरीर, व्यक्ति, समाज परिस्थिति में एक समूह का काम कर सकता है और उस अलौकिक चेतना का अनुभव कर सकता है जिसे ईश्वर कहते हैं। व्यक्ति मात्र का सुन्दर स्वास्थ्यप्राप्ति की क्षमता को उत्पन्न करना ही योग है। स्वयं को जानने का अगर कोई साधन है तो वह है योग। योग द्वारा हम अपने आपको अच्छी तरह से जान सकते हैं। योग, ध्यान, आसन, प्राणायाम सभी आत्म-विश्लेषण के माध्यम हैं।

स्थिरता को लाने के लिये मन को स्थिर करना होगा। मन में बेचैनी, मानसिक अशांति, दूसरों को अपने से भिन्न व हेय समझना आज आधुनिक युग की समस्याओं का मूल कारण है। प्रत्येक व्यक्ति में स्पर्धा की भावना है जिसके वशीभूत होकर वह दूसरे को नीचे गिराना चाहता है। अध्यात्म की कमी ने ऐश्वर्य और भौतिकता को प्रश्रय दे रखा है। बालकों में भी इन वस्तुओं को प्राप्त करने की भावना दिनोंदिन बढ़ती जा रही है जिस पर नियंत्रण आवश्यक है, वह योग-शिक्षा द्वारा संभव है और नारी इस कार्य को सम्पन्न कर सकती है।

बच्चों के निर्माणात्मक काल में उनके शारीरिक और मानसिक क्रिया-कलापों में संतुलन होना बहुत आवश्यक है। माता-पिता बच्चों को तब तक दिशा प्रदान कर शिक्षित नहीं कर सकते जब तक कि ये स्वयं ही कुण्ठाओं से ऊपर न उठें। पारिवारिक शिक्षा के रूप में माता व शिक्षक-शिक्षिका बालक को योग की शिक्षा भी अनिवार्य रूप से दें। योग के अभ्यासी बच्चे अपनी मदद स्वयं करने में समर्थ हो जाते हैं। शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक जीवन को स्वनियंत्रित करने में समर्थ हो जाते हैं।

आज पश्चिम में योगाभ्यास अनिवार्य अंग होता जा रहा है, इससे परिवार के वातावरण में सुधार भी आता है तथा बच्चों में एकाग्रता व स्मरणशक्ति बढ़ जाती है। वे शरीरश्रम की महत्ता जान जाते हैं। इसके अतिरिक्त निरोग रहते हैं व उन पर रोग का आक्रमण नहीं हो पाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज के भौतिक-युग में अध्यात्म का समावेश करना अनिवार्य हो गया है। पाश्चात्य जगत् भौतिक सम्पदा में अग्रणी होकर भी उसे आत्मिक संतोष नहीं है—नित्य प्रतिदिन वहाँ व्यभिचार, तनाव, रक्तचाप, हृदयरोग बढ़ता जा रहा है। उन्हें लगता है कि कहीं कुछ कमी रह गई है और वह है योग का व्यावहारिक प्रयोग कर समाज में नई जागृति लाना। भारत में तो योग की साधना सामाजिक जीवन में रची-बसी हुई थी। योग भारतीय संस्कृति का प्राण है।

'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'। योग द्वारा सब उत्पातों के केन्द्र 'मन' को जीतने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। मन से ही हमें कष्ट की अनुभूति होती है और मन से ही हमें शांति प्राप्त हो सकती है। कामविचार भी मन में आते हैं और शोक विचार भी मन में आते हैं। डिप्रेशन मन में आता है, क्रोध भी आता है। इसलिये मन को स्वस्थ रखने का ध्यान हमारी संस्कृति में विशेषरूप से किया गया है।

आज के वैज्ञानिक योग को विज्ञान के रूप में स्वीकारते हैं और शरीर व मन पर उसके होने वाले परिणामों की जांच कर रहे हैं। उदाहरणार्थ बच्चा जब सात या आठ वर्ष का होने लगता है तो उस समय उसकी रीढ़ की हड्डी चक्र के ऊपर खिचती है। सिर में एक ग्रन्थि होती है जिसे अंग्रेजी में 'पीनियल' कहते हैं और योग में 'आज्ञाचक्र'। यह ग्रन्थि सात साल के बाद धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। इसी प्रकार भावनात्मक विचार और यौन विकास में जो असंतुलन पैदा होता है उसके कारण बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं—मिर्गी, हिस्टीरिया आदि।

प्राचीनकाल में जब बच्चा सात साल का होता था तो उस समय उसे तीन चीजें सिखाई जाती थीं। उसी समय से व्यावहारिक योगमय जीवन का प्रारम्भ हो जाता था। माता ही उसे इन तीन अभ्यासों को करने का उपदेश देती थी। पहला, प्राणायाम—जिसमें रेचक, पूरक और कुम्भक होता था। दूसरा मन्त्र व तीसरे व्यायाम व उपासना।

काम को उद्भ्रांत करने वाले जो हार्मोन्सरूपी विकार ग्रन्थि से निकलते हैं, उनसे अपने को मुक्त करना था। योग में इन्हें ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि एवं रुद्रग्रन्थि कहते हैं। इन ग्रन्थियों के विषय में माण्डूकोपनिषद् में विशेष चर्चा की गई है। इन तीनों में जो रुद्रग्रन्थि है वह उत्पाती ग्रन्थि है। इस रुद्रग्रन्थि को नियन्त्रण में लाने से मनुष्य अपना स्वामी बन जाता है। यही योग की प्रथम अवस्था है। इसको प्राणायाम द्वारा नियन्त्रित किया जाता है जिससे हम अधिक से अधिक दिनों व वर्षों तक अपने मस्तिष्क पर, अपने स्नायुमंडल पर, अपनी शारीरिक ग्रन्थियों पर, अपनी कामना व वासना पर और अपनी नाड़ियों पर नियंत्रण रख सकते हैं। इसीसे ब्रह्मचर्य पुष्ट होता है। योग सिखाता है कि विवाहित जीवन यज्ञ है। एक सत्यता लाने का पुण्य कर्म है, मात्र शारीरिक सुख उसका उद्देश्य नहीं। गृहस्थ से ही हमारा समाज बढ़ता है।

योग की साधना आसन-क्रियाओं से मन में आनन्द उत्पन्न करती है। योग से तन, मन और जीवन शुद्ध होता है। आसन बैठने की वह अवस्था है जिससे शरीर पुष्ट होता है। पद्मासन और खड्गासन में तीर्थंकर प्रतिमाएँ बनाई गई हैं।

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"वीरः ऋषभः नेमिः एतेषां जिनानां पर्यङ्कासनम् ।
शेषजिनानां उत्सर्ग आसनम् ॥"

सर्वांगासन, उत्कटासन व शीर्षासन आदि से जहाँ मन की एकाग्रता आती है वहीं शरीर निरोग हो जाता है ।

योग धर्मनिरपेक्ष साधनापद्धति है । सब लोग नित्य आसन-प्राणायाम करें । इनसे दमा, कोलाइट्स, डायबिटीज का उपचार होता है । योग के पास पेप्टिक अल्सर, क्रोध, रोग, शोक सबका इलाज है । योग के अंगों में ध्यान भी एक है और ध्यान का अभ्यास बच्चों में पूर्णता व उच्चता की प्राप्ति के लिये, शरीर व मन के शिथिलीकरण के लिये ही नहीं बल्कि मस्तिष्क के दाहिने भाग को अधिक क्रियाशील बनाने के लिये लागू किया जाना चाहिये । इससे बालक के ज्ञानचक्षु खुलते हैं ।

योग के द्वारा व्यक्तित्व के दोषों को दूर कर अन्तःप्रज्ञा को विकसित किया जाता है । आजकल विज्ञान द्वारा प्रमाणित हो चुका है कि बालक को पूर्ण शिक्षण देने के लिये योग के पास सुविधाएँ हैं । योगाभ्यास द्वारा आन्तरिक शक्ति की प्राप्ति व बौद्धिक, व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है । योग प्रेम, करुणा उत्पन्न करता है जिससे व्यक्ति का विकास होता है ।

—२२, भक्त नगर,
दशहरा मैदान, उज्जैन, (म. प्र.)

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org